

आदिवासी कविता और अस्मिता का संघर्ष

सुनील कुमार वर्मा

शोधार्थी, गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सेक्टर-29, गाँधीनगर, गुजरात

आदिवासी समाज को उनके जल, जंगल और जमीन पर कब्जा करके उन्हें विस्थापित किया जा रहा है। इस विस्थापन से उनकी अस्मिता खतरे में पड़ गयी है। उन्हें निरंतर समतलों से पहाड़ों और जंगलों में धकेला जाता रहा है। अब उन स्थानों से भी खदेड़ा जा रहा है। आदिवासी क्षेत्रों में अंग्रेज घुसपैठ करके संसाधनों का अतिशय दोहन करते थे। अंग्रेजों के शासन काल में मैदानी इलाकों के सूदखोर, जमींदार और व्यापारी आदि ने इन्हें खूब निचोड़ा और उन्हें जमीनों से बेदखल कर दिया। गैर-आदिवासियों ने इन आदिवासियों की जमीनें धोखे से हस्तान्तरित करा लिए जिससे वे भूमिहीन खेतिहर मजदूर बनकर रह गये।

आजाद भारत की सरकारें भी विकास के नाम पर उनकी जमीनें अधिग्रहण करती रही हैं, जिससे उन्हें विस्थापित होना पड़ा। भारत सरकार द्वारा भूमिअधिग्रहण कानूनों में मनमाने तरीके से संशोधन किये गये। “सरकार के इस नीति के कारण 1991 और 1995 की अवधि के बीच केवल झारखंड में पचास हजार एकड़ भूमि से पन्द्रह लाख लोग विस्थापित हुए जिसमें 41.27 प्रतिशत आदिवासी हैं। जल संसाधन परियोजनाओं के विस्थापितों की संख्या 75.2 प्रतिशत है।”¹

सरकार द्वारा जंगलों के वाणिज्यिककरण कर देने से बड़ी संख्या में जंगल काटे गये। इसके अलावा विकास के नाम पर कहीं आर्थिक जोन बनाये जा रहे हैं, पहाड़ों को काटा जा रहा है, बड़े-बड़े बांध बनाये जा रहे हैं, भारी उत्खनन का कार्य हो रहा है। इस घुसपैठ से आदिवासियों के जल, नदी और पहाड़ से घिरे उनके प्राकृतिक और परम्परागत परिवेश से बेदखल होते जा रहे हैं।

इन विभिन्न घुसपैठ के कारणों से आदिवासी समाज के प्राकृतिक जीविका के संसाधन नष्ट हो गये। वेबेरोजगार होकर सस्ते मजदूरों की जमात बनकर रह गये हैं। उनकी बेकारी का लाभ ठेकेदार उठा रहे हैं। घोर तंगी के हालत में उनकी बहु-बेटियों का शोषण हो रहा है। आदिवासी रोजगार की तलाश में अनेक शहरों की ओर जाने लगे हैं, जिनसे सस्ती दर पर मजदूरी करायी जाती है। आदिवासियों को ईंट-भट्टों पर काम करते हुए अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है। आदिवासियों के विस्थापन से उनकी भाषा, संस्कृति, सामूहिक जीवन शैली, परम्परा, रीति-रिवाज, लोक-नृत्य, लोक गीत, कृषि आधारित कुटीर धंधे, बड़ाईगिरी, लोहागिरी,

पशुपालन, मधु उत्पादन, रस्सी बुनाई आदि विरासत नष्ट होने लगे हैं।

आदिवासी लोग स्वभाव से सरल और शांतप्रिय होते हैं। अपने परिवेश से उन्हें लगाव होता है। बाहरी लोगों के अतिशय अतिक्रमण ने इन्हें उग्र बना दिया है। ये अपने परिवेश की रक्षा के लिए वीरता पूर्वक प्रतिरोध करने लगे हैं। आदिवासियों ने अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए अंग्रेजों से संघर्ष किया। आजाद भारत में बाहरी लोगों के हस्तक्षेप का विरोध करते रहे हैं। लेकिन इनकी आकांक्षाओं को शासन-प्रशासन, नेता और ठेकेदार आदि लोग दमन करते रहे हैं।

आजादी के बाद शिक्षा के बढ़ते प्रसार से आदिवासी समाज थोड़ा-बहुत पढ़ रहा है। इस चेतना के कारण अब वे तीर-धनुष और तलवार की जगह कलम को अपना औजार बना लिया है। आदिवासी समाज का दुःख-दर्द गैर-आदिवासी साहित्यकारों द्वारा भी प्रमुखता से उठाया है जो साहित्य के अनेक विधाओं में लिखा जा रहा है। इन विधाओं में कविता अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई है। आदिवासी कविता में आदिवासी जीवन की विभिन्न संगतियों-विसंगतियों का उल्लेख है। इस सन्दर्भ में “आदिवासी कविताओं का विश्लेषण किया जायेगा तो कविता के लिए आदिवासी जीवन का गहन अनुभव, विषयानुरूप भाषा का मुहावरा, सम्प्रेषणीयता और प्रकृति तथा मानवता के दुःख-सुख में शामिल होने की प्रेरणा आदि की बात सामने आयेंगी।आप आदिवासी जीवन के अतीत, प्राकृतिक प्रेम, श्रम की महत्ता और सौन्दर्य, दुःखों के विरुद्ध संघर्ष, अच्छे दिनों के स्वप्न आदि की अभिव्यक्ति देखेंगे।”²

प्रकृति आदिवासियों की सहचरी रही है। प्रकृति ने कभी उन्हें हंसाया, कभी रूलाया किन्तु आदिवासियों ने प्रकृति के प्रति कभी विद्रोही रूप नहीं अपनाया। आज उसी प्रकृति से उसे बेदखल किया जा रहा है, उससे जंगल, जमीन और फल छीने जा रहे हैं। विडम्बना है कि सब उनके विकास और सुधार के नाम पर किया जा रहा है। आदिवासी कवयित्री **ग्रेस कुजूर** चेतनावनी देती हैं कि-

“इसलिए फिर कहती हूँ
न छेड़ों प्रकृति को
अन्यथा यही प्रकृति
एक दिन

मांगेंगी
हमसे
तुमसे
अपनी तरुणाई का
एक एक छरण
और करेगी
भयंकर बगावत
और तब
न तुम होंगे
न हम होंगे”³

आदिवासी क्षेत्रों में अंधाधुंध संसाधनों के उपभोग से पर्यावरण में असंतुलन पैदा हो गया है। ‘अनुजलुगुन’ की कविता ‘हमारी अर्थी शाही हो नहीं सकती’ में जल, जंगल, जमीन और पहाड़ के बचाव की चिंता व्यक्त की गयी है। ताकि इन संसाधनों के बचाव से आदिवासी समुदाय का अस्तित्व बना रहे।

“हमने चाहा कि
फसलों की नस्ल बची रहे
खेतों के आसमान के साथ
हमने चाहा कि जंगल बचा रहे
अपने कुल-गोत्र के साथ
पृथ्वी को हम पृथ्वी की तरह ही देखें
पेड़ की जगह पेड़ ही देखें
नदी की जगह नदी
समुद्र की जगह समुद्र और
पहाड़ की जगह पहाड़”⁴

आदिवासी लोग अपने परिवेश की रक्षा के लिए तत्पर रहते हैं। जब बाहरी लोग उनके परिवेश को बिगड़ने का प्रयास करता है तो उस परिवेश की रक्षा के लिए संघर्ष का रास्ता अख्तियार करने पर विवश हो जाते हैं। ‘अनुज लुगुन’ की कविता में इसका जिक्र है –

“ओ मेरी युद्धरत दोस्त !
तुम कभी हारना मत
हम लड़ते हुए मरे जायेंगे
उन जंगली पगडण्डीयों में
उन चौराहों में
उन घाटों में
जहाँ जीवन सबसे अधिक सम्भव होगा”⁵

आदिवासी क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में पेड़ काटे गये जिससे प्राकृतिक सुन्दरता नष्ट हो गयी। आदिवासी लोग अतीत को याद करते हुए दुखी हो रहे हैं कि हम प्रकृति के गोद में ही जीवन गुजारते थे, हमारी दिनचर्या उसी से जुड़ी थी, हम उसी के साथ हँसते-खेलते-गाते थे। अब उस प्रकृति को हम से छीन लिया गया है। पर्यावरण क्षरण का दुःख ग्रेस कुजूर अपनी कविता ‘एक जनी शिकार’ में करती है-

“कहाँ है वह फूटकल का गाछ
जहाँ चढ़ती थी मैं

साग तोड़ने
और गाती थी तुम्हारे लिए
फगुआ के गीत
जाने किधर है
कोमल पत्तियों वाला
कोयनार का गाछ
जिसके नीचे तुम
बजाय करते थे मांदरी और बांसुरी?
कहाँ गयी वह सुगंध
महुआ और डोरी की
गूलर और केयोंद की
कहाँ खो गया बांसों का संगीत
और जाने कहाँ उड़ गयी
‘संधना’ की सुगंध ?”⁶

प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से जीव-जन्तुओं के आवास स्थल नष्ट हो गये हैं। इस कारण वन्य जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। वह धीरे-धीरे विलुप्त होते जा रहे हैं। विलुप्त होते जीवों को लेकर ‘ग्रेस कुजूर’ अपनी कविता ‘एक जनी का शिकार’ में कहती हैं।

“संगी रे
न जाने कौन से देश उड़े
क्षितिज के पार वे
हरे खेतों में विचरते बकुले
नहीं खेलती झूमर अब
‘डोभा’ के पानी में
‘गीतू’ और ‘बुदू’ मछलियाँ”⁷

बाहरी लोग आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन पर कब्जा करने के बाद, आदिवासी स्त्रियों पर भी गिद्ध दृष्टि डाले हुए है। आदिवासी मुखिया को विदेशी शराब देकर आदिवासी स्त्रियों को बरगलाकर बहुसंख्या में उन्हें बाहर भेजा जाता है। उन स्त्रियों का अश्लील फोटो खींचा जाता है, उन्हें वेश्यावृत्ति के धंधे में धकेल दिया जाता रहा है। वे कुंआरी माँ बनने पर विवश हो जाती। ‘निर्मला पुतुल’ ने कविता ‘चुड़का सोरेन से’ में आदिवासी स्त्रियों के दयनीय जीवन के बारे में कहती है –

“कैसे बिकाऊ है
तुम्हारी बस्ती का प्रधान
जो सिर्फ एक बोटल विदेशी दारू में
रख देता है
पूरे गाँव को गिरवी
और ले जाता है
लकड़ियों को गट्टर की तरह
लादकर अपनी गाड़ियों में
तुम्हारी लड़कियों को
जिनकी लिजलिजी दीवारों पर
पाँव रखकर
वे भागती हैं

बेतहाशा पश्चिम की ओर।

बचाओं अपनी बहनों को

कुआँरी माँ बनी पड़ोस की”⁸

आदिवासी कवयित्री *‘निर्मला पुतुल’* अपने समाज के स्त्रियों के सुख-दुःख के प्रति सचेत हैं। वे जमीन से जुड़ी हुई कवयित्री हैं। उनकी कविताओं में आदिवासी समाज के जीवन की बारीकियाँ अत्यंत सहज ढंग से प्रस्तुत होती हैं। वे अपने समाज को सचेत करती हैं कि-

“देखो तुम्हारी ही आँगन में बैठे

तुम्हारी हाथों बनी हड़िया तुम्हें पिलाकर

कोई कर रहा है

तुम्हारी बहनों से ठिठोली”⁹

आदिवासी संथाली लड़कियों को अनैतिक कहा जाता, उन्हें दुत्कारा जाता है। लेकिन सच्चाई यह है कि, समाज के सभ्य कहे जाने वाले लोग ही अपनी हवस पूरा करने के लिए उनकी बस्ती में आते हैं। कवयित्री *‘निर्मला पुतुल’* कविता *‘संथाली लड़कियों के बारे में कहा गया है’* में कहती है कि, बाहरी लोगों द्वारा हमारे विकास योजनाओं का मद लेकर पचा जाते हैं, हमारी जमीन, संसाधन पर कब्जा जमाकर हमको बेदखल कर देते हैं। कवयित्री इस बहुरूपी शोषण का कड़ा विरोध प्रकट करती हैं और चेतावनी की मुद्रा में निर्भीकता के साथ लिखती हैं कि-

“ये वे लोग हैं जो

हमारे ही नाम पर लेकर

गटक जाते हैं हमारे हिस्से का समुद्र

ये वे लोग हैं

जो हमारे बस्ती पर करते हैं

हमारी बस्ती का बलात्कार

और हमारी ही जमीन पर

खड़े होकर पुछते हैं हमसे हमारी औकात !

ये वे लोग हैं जो मेरी कविताओं में भी

तलाशते हैं मेरी देह।”¹⁰

आदिवासी लोगों के भूमि पर कोई अतिक्रमण करता है तो ये उसका वीरतापूर्वक प्रतिरोध करते हैं। इतिहास दर्शाता है कि, आत्म संरक्षण के लिए इन्होंने कई युद्ध किए। जमींदारों, साहूकारों और ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा किए गये अतिशय शोषण के विरुद्ध कोल, मुंडा, और जनजाति लोगों ने खुले रूप से विद्रोह किया था। संथालों ने जमींदारों, साहूकारों द्वारा शोषण के कारण विद्रोह किया था। संथाल विद्रोह के नायकों में सीधू, कान्हू, चाँद और भैरव आदि प्रमुख थे। बिरसा मुंडा ने हिन्दू जमींदारों, साहूकारों, अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया था। आदिवासी बिरसा की वीरता को आदिवासी याद करते हैं और उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। *‘भुजंग मेथाम’* ने कविता *‘ओ मेरे बिरसा’* में *‘बिरसा दादा’* के सम्बोधन से उनकी वीरता को याद किया गया है-

“दिशा देते हो

तब तुमने ही तो किया था संघर्ष

गोरों को खदेड़ने की खातिर

सिंहभूम, मंडला, वसई

चंद्रपुर को करने को आजाद

बचाने के लिए हरे-भरे जंगल

आज न गोर हैं

न सपनों की आजादी

आज न घने विहड़ है

ना तू है

है केवल बीहड़ों में फैलता असंतोष”¹¹

आज ऊँची-ऊँची इमारतें बन रही हैं तारकोल से चमचमाती सड़के बन रही हैं, चारों ओर मोटरकारों का शोरगुल हो रहा है। सभा-संगोष्ठियों में इस भौतिक विकास पर गर्व किया जाता और आदिवासीयों के झुग्गी-झोपड़ियों और खपरैलों के प्रति चिंता व्यक्त की जाती है, लेकिन एक आदिवासी अपनी इस आवास स्थल पर गर्व व्यक्त करता है, जहाँ शुद्ध हवा है, पानी है, प्रकाश है, झाड़-झंखाड़ है। कवि *‘सी.एल.सांखला’* ने कविता *‘जंगली’* में जंगल के जीवन के बारे में कहते हैं—

“जिनकी झुगियाँ-झोपड़ियाँ और खपरैले घर

धब्बे हैं तुम्हारी कालोनियों की सुन्दरता पर

मारे शर्मिंदगी के उखाड़ देना चाहते हो

रोप देना चाहते हो तुम्हारी मर्जी के अंकुश

ताकि हवा-पानी और उजाले के लिए भी गिड़गिड़ाए वो तुम्हारे सामने

और तुम बार-बार ‘जंगली’ कह कर दुत्कारते रहो उन्हें

मगर मैं गाली नहीं आशीष मानता हूँ ‘जंगली’ कहाना

क्योंकि उपवन-वाटिका नहीं

एक जंगल ही तो है

मेरा घर”¹²

आदिवासियों का जीवन अभावग्रस्त है। वे अपना उचित हक मांग रहे हैं लेकिन उनकी मांग को अनसुना कर दिया जाता। उनके परम्परागत आजीविका के संसाधनों पर भी प्रतिबन्ध है। मेहनत-मजदूरी करने पर उन्हें उचित मजदूरी नहीं मिलती और पुलिस वाले उनसे अवैध वसूली भी करते हैं। आदिवासी कुण्ठा और अभाव में जीवन व्यतित कर रहा है। बाहरी लोग उनके संस्कृति और महोत्सव के बहाने उनका अक्षील तस्वीरें उतारते हैं। कविता *‘पहाड़’* में *‘हरिशंकर आग्रह’* उनके इस विडम्बना को व्यक्त करते हैं -

“पहले की तरह आज भी नंगे भूखे हैं पहाड़

सदियों से अपने जीने का हक माँग रहे हैं

लेकिन उनकी आवाज अंधी गहरी घाटी में बिलाकर रह जाती है

जब वे उतारते हैं निचे सिर पर गठुर लेकर

ठोकर मारती है वार्दियाँ और छीन लेती हैं हफ्ते भर का नमक-तेल

बीड़ी की तरह बुझकर रह जाता है पहाड़
लोक संस्कृति की झाकियों और महोत्सवों का हिस्सा
बनने के लिए
खोज लेती हैं कैमरों की अक्षील आँख
पहाड़ की जंघाएँ और स्तन।”¹³

निष्कर्षतः आदिवासी समाज को विस्थापित किया जा रहा है, जिससे उनकी भाषा, संस्कृति, पहचान, रीति-रिवाज और परम्पराएँ आदि नष्ट हो रही हैं। उनके परम्परागत जीविका के साधनों का अंधाधुंध दोहन हो जाने से उनके सामने भूखमरी की समस्या आ खड़ी हो गयी है। वे सस्ते मजदूरों की जमात बन कर रह गये हैं, जिसका लाभ ठेकेदार उठाते हैं।

जंगलों की कटाई से प्राकृतिक असंतुलन पैदा हो गया है। बाढ़-सुखाड़ की समस्या दिनोंदिन गम्भीर हो रही है। अनेक जीव-जन्तु विलुप्त हो रहे हैं। आदिवासियों को मिलने वाली सरकारी सहायता विचौलिए लूट ले रहे हैं। संस्कृति के नाम पर उन्हें कच्ची शराब बनाने की छूट दे दी गयी है जिससे उनका जीवन दयनीय हो गया है। आदिवासी समाज के बेटियों को शहरों में विक्रय किया जाता है। जिन्हें देह-व्यपार के धंधे में धकेल दिया जाता। उनकी संस्कृति को दिखाने के नाम पर उनकी अक्षील फोटो खींचा जाता। आदिवासी नंगे-भूखे हैं, उनके सहायता की मांग को ठुकरा दिया जाता। अतः आदिवासी निम्न जीवन स्तर गुजर करने पर विवश है और अपने अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता, रमणिका, *आदिवासी अस्मिता का संकट*, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 58
2. मीणा, हरिराम, सं., *समकालीन आदिवासी कविता*, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, सम्पादकीय पृष्ठ 8
3. राणावत, उषा कीर्ति, शीतला प्रसाद दुबे, सतीश पाण्डेय, सं., *आदिवासी केन्द्रित हिंदी साहित्य*, अतुल प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 177
4. मीणा, हरिराम, सं., *समकालीन आदिवासी कविता*, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 16
5. वही, पृष्ठ 17
6. वही, पृष्ठ 18
7. वही, पृष्ठ 20
8. वही, पृष्ठ 29
9. गुप्ता, रमणिका, *आदिवासी अस्मिता का संकट*, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 128
10. मीणा, हरिराम, सं., *समकालीन आदिवासी कविता*, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 31
11. वही, पृष्ठ 34
12. वही, पृष्ठ 41
13. वही, पृष्ठ 102